विक्रम संवत-२०३६, भाद्र शुक्ल - ७, मंगलवार, तारीख १६-९-१९८०
वचनामृत -३८९, ३९० प्रवचन-३५

आज दसलक्षणी पर्व में तीसरा प्रकार है। उत्तम आर्जव धर्म। ... आज आर्जव धर्म। यह सब चारित्र के भेद हैं। चारित्रवन्त हो, उसको यह होता है। सम्यग्दृष्टि या श्रावक पंचम गुणस्थान में हो, उसमें अंश है। मूल चारित्रधर्म की व्याख्या है। सरलपना कितना होना चाहिए। धर्मी को आर्जव-सरलपना कैसा होना चाहिए?

जो चिंतेइ ण वंकं, कुणदि ण वंकं ण जंपदे वंकं।
ण य गोवदि णियदोसं, अज्जवधम्मो हवे तस्स॥३९६॥

जो कोई प्राणी मन में हो, उसे छिपाये नहीं। आहाहा! **मन में वक्रतारूप चिन्तवन नहीं करे,...** सरल। सरलता के तो दो प्रकार है। एक सरलता पुण्यबन्ध का कारण है। वह यह नहीं। सरलता-मनसरलता, वचनसरलता, कायसरलता। अविसंवाद जोगेण अर्थात् झगड़ा नहीं। ये चार बोल से पुण्यबन्ध होता है। नामकर्म बँधता है। वह यह नहीं। वह बड़ी चर्चा हुई थी, (संवत्) १९८२ का वर्ष। जामनगर। वे तो साधु को धर्म पढ़ाते थे। आर्जवादि धर्म... देखो! आपका ज्ञानार्णव... कौन-सा? ज्ञानसागर। वहाँ का बनाया है। उसमें मनसरलता, वचनसरलता, कायसरलता शुभ पुण्यबन्ध का कारण है। वह विकल्प और राग है। यह नहीं।

यह तो एकदम सरलता, आत्मा के भानसहित। आहाहा! वह बड़ी चर्चा हुई थी। उसने कहा, इसमें धर्म है न? मन से सरलता। कहा, मन से सरलता धर्म नहीं है। १९८२ के वर्ष की बात (है)। ८२। ताराचन्द वारिया थे, साधु को पढ़ाते थे। स्थानकवासी साधु को पढ़ाते थे। सरलता धर्म है न? कहा, सरलता के दो प्रकार है। मन से राग की सरलता, वह पुण्यबन्ध का कारण है। और मन से अन्तर में शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवन्त, उस पर

दृष्टि रखकर वक्रता न करना, सरलता करना, उसको आर्जव धर्म कहते हैं। उसको धर्म कहते हैं। हमारे साथ तो बहुत चर्चा पहले से (चलती है)। सम्प्रदाय में बहुत फेरफार था।

यह आर्जव धर्म तो कोई अलग चीज़ है। मन से मात्र वक्रता न करे और सम्यग्दर्शन न हो। आत्मज्ञान शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवन्त, सच्चिदानन्द प्रभु उसका ज्ञान, प्रतीत और अनुभव न हो, तब तो आर्जव धर्म होता नहीं। जहाँ सम्यग्दर्शन नहीं है, वहाँ मुनिपना कहाँ से आया? यह तो मुनिपना का एक भेद है। आहाहा! इतना सब विचार (कब किया है?)

यहाँ यह कहते हैं, मन से वक्रता, वचन से वक्रता छोड़ दे। काया से वक्रता छोड़ दे। **अपने दोषों को नहीं छिपावे...** आहाहा! अपने में कोई दोष हो, आत्मज्ञानसहित मुनिपना में भी कोई रागादि आ जाए, ऐसा दोष हो तो दोष को छिपावे नहीं, ढके नहीं। खुले करके गुरु के पास बता दे कि मेरे में ऐसा दोष लगा है तो आप प्रायश्चित्त दीजिए। ऐसी सरलता, उसे यहाँ भगवान उत्तम धर्म कहते हैं। परन्तु वह आत्मा अन्दर आनन्दस्वरूप ज्ञान का पिण्ड प्रभु, उसका जिसको अनुभव हुआ हो, उसको आगे बढ़ने पर बहुत पुरुषार्थ करके सरलता प्रगट करता है, उसको यहाँ आर्जव-सरल धर्म कहने में आता है। आहाहा! इतनी सब शर्तें।

भाई! धर्म कोई साधारण चीज़ नहीं है। धर्म तो कोई अलौकिक चीज़ है। वह अकेली बाह्य की सरलता नहीं है। अन्दर ज्ञायकस्वरूप में बिल्कुल वक्रता का अंश नहीं है। चिदानन्द वीतरागमूर्ति की दृष्टि करके, दृष्टि बनकर राग और वक्रता छोड़कर सरलता करना, उसे प्रभु आर्जव धर्म, तीसरे धर्म का प्रकार कहने में आता है।

३८९। आज तो किसी का लिखा हुआ है। सब था, ऐसा मीठा, बहिन के वचन... किसी ने लिखा है, वैसे पढ़ते हैं। ३८९। तीन पंक्ति चली है। फिर से। आहाहा! **जिसको द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है,...** द्रव्यदृष्टि। द्रव्य अर्थात् आत्मा। उसकी दृष्टि अन्दर प्रगट हुई हो, आहाहा! सर्व प्रथम यही करना है। सम्यग्दर्शन के बाद बाकी सब बात। चारित्र की, पच्चखाण आदि की बाद में। परन्तु प्रथम जिसको द्रव्यदृष्टि (होती है)। द्रव्य अर्थात् वस्तु। चैतन्य भगवान त्रिकाली आनन्दनाथ, पूर्णानन्द का नाथ प्रभु शुद्ध घन, उसकी दृष्टि

यथार्थ प्रगट होती है। उसकी दृष्टि परन्तु यथार्थ - जैसा द्रव्य है, ऐसी दृष्टि होती है, **उसे दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक ही...** आहाहा! मैं तो चैतन्य ज्ञायक हूँ। ज्ञायक तो जानने-देखनेवाला मैं हूँ। ऐसे **भासता है,...** आहाहा!

धर्म अलौकिक चीज़ है। वर्तमान में उसमें गड़बड़ कर दी। धर्म अनन्त कल में अनन्त भव में एक सेकेण्ड भी नहीं हुआ, प्रभु! वह धर्म कैसा होगा? अनन्त बार जैनदर्शन में आया, अनन्त बार समवसरण में गया तो भी आत्मज्ञान क्या चीज़ है, सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, उसकी उसने दरकार की नहीं। आहाहा!

वह कहते हैं... आहाहा! **जिसको द्रव्यदृष्टि यथार्थ प्रगट होती है,...** यथार्थ। **उसे दृष्टि के जोर में...** अन्दर ज्ञायक अकेला चैतन्यस्वरूप, जिसमें दया, दान के विकल्प का भी अभाव है, ऐसी चीज़ को देखने से-दृष्टि होने से, उसकी दृष्टि करने से, उसके जोर में **अकेला ज्ञायक ही...** आहाहा! **चैतन्य ही भासता है,...** मूल बात है, प्रभु! ऊपर की बातें तो लोग सब करते हैं, परन्तु मूल बात-जिससे जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसा सम्यग्दर्शन, उसका ध्येय द्रव्य अपना पूर्णानन्द नाथ, वह सम्यग्दर्शन का ध्येय, सम्यग्दर्शन का लक्ष्य वह है। उसकी बात तो पड़ी रही, ऊपर से बात (चलने लगी)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **दृष्टि के जोर में अकेला ज्ञायक ही...** आहाहा! मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ। ऐसा ही **भासता है,..** है? **ज्ञायक ही—चैतन्य ही भासता है,...** आहाहा! **शरीरादि कुछ भासित नहीं होता...** मेरेपने शरीरादि भासित नहीं होता। ज्ञान होता है, परन्तु शरीर, वाणी, मन और दया, दान का विकल्प, भक्ति का विकल्प अपनापने भासित नहीं होता। आहाहा! आदि है न? शरीर आदि। अर्थात् शरीर, वाणी, मन, दया, दान, भक्ति का परिणाम कुछ अपना भासित नहीं होता। आहाहा! ऐसा धर्म है, भाई! वहाँ तक कल आया था। कल वहाँ तक (आया था)।

भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है... धर्म करनेवाली प्राणी को राग और पर से आत्मा भिन्न है, ऐसे भेदज्ञान की परिणति अर्थात् दशा.. आहाहा! दया, दान का विकल्प आदि और शरीर, वाणी, मन आदि सब उससे भिन्न भेदज्ञान की दशा ऐसी दृढ़ हो जाती है समकिती को। प्रथम नम्बर का धर्म। धर्म की पहली सीढ़ी। धर्म का प्रथम

सोपान। आहाहा! उसी में भेदज्ञान की अवस्था, परिणति अर्थात् दशा, **ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा...** आहाहा! स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है। आहाहा! यह प्रथम सम्यग्दर्शन की दशा। प्रथम धर्म की सीढ़ी। आहाहा! इसको छोड़कर सब बात शून्य हैं। एक बिना के शून्य। क्या कहते हैं? एक बिना के शून्य। आहाहा! अरेरे..!

ऐसा मनुष्यपना अनन्त बार मिला है और अनन्त बार जैनधर्म में जन्म भी हुआ है और अनन्त बार अरबोंपति भी हो गया है। उसमें कोई नवीन चीज़ नहीं है। आहा..! अरे..! अनन्त बार पंच महाव्रत भी धारण कर लिया है। वह कोई नयी चीज़ नहीं है। आहाहा! परन्तु अन्दर राग के विकल्प से भिन्न आत्मा, **भेदज्ञान की परिणति ऐसी दृढ़ हो जाती है कि स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है।** मुद्दे की रकम की बात है, भैया! आहाहा! ऊपर की बातों में कोई माल नहीं है। शरीर चला जाएगा, आत्मा तो सत्ता-अस्ति है, अनादि-अनन्त है, शरीर छूटेगा। चौरासी वन में कहाँ चले जाएगा। ओहोहो! चौरासी के अवतार, चौरासी लाख योनि। एक-एक योनि में... योनि अर्थात् उत्पत्ति स्थान। चौरासी लाख। एक-एक उत्पत्ति स्थान में अनन्त बार उत्पन्न हुआ। परन्तु कभी उसने सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान क्या है, उसकी दरकार की ही नहीं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **स्वप्न में भी आत्मा शरीर से भिन्न भासता है।** आहाहा! जिसको भेदज्ञान करना है,... भेदज्ञान का अर्थ—शरीर, वाणी, मन और पुण्य-पाप के भाव, उससे भिन्न ऐसा आत्मा, उसका नाम भेदज्ञान। आहाहा! **दिन को जागृतदशा में तो ज्ञायक निराला रहता है...** आहाहा! धर्मी को... धर्म बापू! अलौकिक है, प्रभु! आहाहा! अन्तर की दृष्टि राग का विकल्प, दया, दान, भक्ति से भी भिन्न ऐसी चीज़ की भेदज्ञान दृष्टि हुई तो **दिन को जागृतदशा में तो ज्ञायक निराला रहता है...** आहाहा! जागृतदशा में ज्ञायक समकिती को निराला रहता है। आहाहा! **परन्तु रात को नींद में भी...** आहाहा! रात्रि में नींद में भी **आत्मा निराला ही रहता है।** आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन। उसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी, पहली श्रेणी, पहला सोपान-पहली सीढ़ी। इसकी खबर नहीं और दुनिया कहीं-कहीं चलकर रुक गयी, जिन्दगी चली जाती है। आहाहा! बहिन को तो रात्रि को किसी ने प्रश्न (किया होगा), बहनें बैठी हो, उनसे यह बोला गया है। अन्तर से। आहा..!

रात को नींद में भी आत्मा निराला ही रहता है। आहाहा! अरे..! **निराला तो है**

ही... अब क्या कहते हैं ? अन्तर वस्तु चैतन्यस्वरूप की सत्ता अभी भी निराली ही है। राग से, शरीर से भिन्न ही है। **निराला तो है ही परन्तु प्रगट निराला हो जाता है।** आहाहा! द्रव्य अपेक्षा से वस्तु निराली है - भिन्न है। वस्तु अपेक्षा से। परन्तु पर्याय में निराला हो जाता है। आहाहा! क्या कहते हैं ? वस्तु चीज़ जो है अस्तिपना, सच्चिदानन्द प्रभु द्रव्य चैतन्य, वह तो त्रिकाल वस्तु निरावरण ही है। परन्तु जब भेदज्ञान होता है और सम्यग्दर्शन होता है, तब पर्याय में प्रगट होता है। है ?

निराला तो है ही परन्तु प्रगट निराला हो जाता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात। इसलिए इन लोगों ने सूक्ष्म बात निकाल दी और मोटी-मोटी बातें सुनाने (लगे)। लोगों को ठीक पड़े, प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए और जिन्दगी चली जाए। आहाहा! अनन्त भव हो गये, बापू! अनन्त-अनन्त अवतार किये। यह कोई नयी चीज़ नहीं है। अनन्त बार मनुष्यपना (मिला), जैन में जन्म (हुआ), जैन में साधु, जैन का साधु व्यवहारी आत्मज्ञान बिना का... आहाहा! आत्मज्ञान क्या चीज़ है, उसकी खबर बिना वस्तु तो निराली पड़ी ही है, कहते हैं। परन्तु सम्यग्दर्शन होता है और राग से भिन्न भेदज्ञान होता है, परन्तु प्रगट निराला होता है, पर्याय में निराला होता है। वस्तु तो निराली ही अन्दर पड़ी है, परन्तु भान होने से उसकी पर्याय में निराला-भिन्न भान होता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

उसको भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है... सम्यग्दृष्टि को निराला आत्मा का भान होने पर भी भूमिका-अपनी दशा अनुसार बाह्य वर्तन होता है। **परन्तु चाहे जिस संयोग में उसकी ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई और ही रहती है।** आहाहा! बाह्य वर्तन में तो गृहस्थी है, जब तक मुनि... अन्तर में मुनिदशा प्रगट नहीं हुई, तब तक गृहस्थाश्रम में समकिती बाह्य वर्तन में दिखता है, परन्तु उस बाह्य वर्तन में भी उस संयोग में उसको **ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई और ही रहती है।** आहाहा! मैं तो आत्मा ज्ञायक हूँ। विकल्प राग उठता है, वह भी मेरी चीज़ नहीं, भिन्न हूँ। ऐसा वैराग्य और ऐसा ज्ञान, ऐसा ज्ञान और ऐसा वैराग्य, आहा..! **कोई और ही रहती है।** अजब शक्ति है, कहते हैं। आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान में अन्तर आत्मा भिन्न भासता है, तब ज्ञान-वैराग्यशक्ति हमेशा रहती है। आहा..!

ज्ञान-वैराग्य का अर्थ (यह कि) अपना चैतन्यस्वरूप का ज्ञान और वैराग्य अर्थात् पुण्य और पाप दोनों भाव से विरक्त। पुण्य-पाप अधिकार में वैराग्य का अधिकार लिया

है। समयसार में। शुभ और अशुभ दोनों भाव। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा आदि भाव और हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग भाव। दोनों भाव से जो अनादि से रक्त है, ज्ञानी उससे विरक्त है। आहाहा! धर्मी उससे विरक्त है। तो दो आया। एक तो जो चीज़ है, उसका ज्ञान और पुण्य-पाप के भाव से विरक्तता, वह वैराग्य। ऐसी चीज़ है, सेठ!

मुमुक्षु :- ऐसा मानने से काम हो जाएगा?

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह मानने से काम हो जाएगा। जन्म-मरण मिट जाएगा। आहाहा! यह आचरण है। अन्तर सम्यग्दर्शन, ज्ञान का आचरण यह है। इसके बिना चारित्र का आचरण चारित्र-फारित्र होता नहीं। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु! आहाहा!

श्रेणिक राजा, क्षायिक समकिती। पहले तो उसे नरक का आयुष्य बँध गया। श्रेणिक राजा। एक मुनि थे। ध्यान में बैठे थे। सच्चे मुनि थे। एक मरा हुआ सर्प उनके गले में डाल दिया। श्रेणिक राजा पहले तो बौद्धमति था। डाला तो लाखों चींटियाँ (हो गयीं)। राजा घर पर आया। चेलना उसकी स्त्री समकिती (थी)। चेलना स्त्री आत्मज्ञानी (थी)। उसने कहा, तेरे गुरु पर मैंने सर्प डाला है। उसे निकाल देगा। उपसर्ग निकाल देंगे। यह बौद्धधर्मी था। रानी ने कहा, अन्नदाता! हमारे गुरु ऐसे नहीं होते। उपसर्ग आये, उसे उठाते नहीं। उग्र पुरुषार्थ करके अन्दर जाते हैं। चल, देखते हैं, पति-पत्नी दोनों गये। मुनि ध्यान में बैठे हैं। गले में मरा हुआ सर्प था और चींटियाँ, लाखों चींटियाँ। चेलना ने चींटियाँ हटा दी। देखो! मुनि तो ध्यान में हैं। इतना कहा तो ध्यान छूट गया। ध्यान छूट गया... श्रेणिक राजा को आश्चर्य हुआ कि ओहो..! ऐसे उपसर्ग के काल में भी ध्यान में रहते हैं! प्रभु! मुझे धर्म समझाईये। बौद्धधर्मी था। चेलना उसकी स्त्री समकिती ज्ञानी थी। जैन थी। जैन अर्थात् सम्प्रदाय नहीं। अन्तर अन्तर जैन, आत्मज्ञान था। आहाहा! राजा को आश्चर्य हो गया। आहाहा! यह दशा! प्रभु! मुझे धर्म समझाईये। वहाँ समकित प्राप्त हुआ। श्रेणिक राजा ने वहाँ समकित प्राप्त किया। आहाहा! आत्मज्ञान पाया। हजारों रानियाँ, हजारों राजा चंवर ढाले, ऐसी बाह्य प्रवृत्ति थी। परन्तु अन्दर में दृष्टि और ज्ञान में भिन्न थे। आहा..!

राजा को नरक का आयुष्य बँध गया था। मुनि के गले में सर्प डाला था न। सातवीं

नरक का आयुष्य बँध गया था। तैतीस सागर का। परन्तु समकित पाया तो तैतीस सागर तोड़कर चौरासी हजार वर्ष रह गये। आहाहा! अभी नरक में हैं। आयुष्य बँधा, वह छूटता नहीं। लड्डू बन गया, घी, शक्कर या आटे का लड्डू हुआ, उसमें से घी निकाल पूड़ी नहीं बनती। उसे तो खाने पर ही छुटकारा है। लड्डू को थोड़े दिन सुखाये तो भले थोड़ा हो, अथवा उस लड्डू में थोड़ा घी हो, परन्तु लड्डू को खाये बिना छुटकारा नहीं है। उसमें से कोई घी निकालकर या आटा निकालकर रोटी बना दे, ऐसा नहीं है।

वैसे आयुष्य बँध गया... आहाहा! पर भाव का आयुष्य बँध गया, उसे तो भोग बिना छुटकारा नहीं है। घट जाए, आत्मधर्म प्राप्त करे तो घट जाए। तैतीस सागर का आयुष्य बँध गया था। सातवीं नरक। आहाहा! उसका चौरासी हजार वर्ष रह गये। अभी नरक में है। और समकित प्राप्त करने के बाद भगवान के पास गये। महावीर परमात्मा के पास गये। समकित तो मुनि के पास प्राप्त किया। फिर भगवान के पास गये, वहाँ तीर्थंकर गोत्र बाँधा। आगामी चौबीसी में इस भरत में प्रथम तीर्थंकर होंगे। आहाहा! चारित्र-बारित्र नहीं था। सम्यग्दर्शन-क्षायिक समकित (था)। हजारों रानियाँ और हजारों राजा चंवर ढालते थे। परन्तु आयुष्य बँध गया, तो आयुष्य लम्बा था, जहाँ आत्मज्ञान प्राप्त किया तो आयुष्य टूट गया। तैतीस सागर छूटकर चौरासी हजार वर्ष रहे। अभी पहली नरक में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में है।

नीचे सात नरक है। आहाहा! नीचे सात नारकी हैं। माँस, दारू, अण्डे खाये, वह महापाप। वह मरकर नरक में जाते हैं। आयुष्य बँध गया था। इसलिए चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में अभी नरक में है। वहाँ भी तीर्थंकर गोत्र बाँधते हैं। संयोग प्रतिकूल है। जितना राग, कषाय है, उतना दुःख भी है। आनन्द भी है। वहाँ से निकलकर श्रेणिक राजा आगामी चौबीसी में यहाँ प्रथम तीर्थंकर होंगे। आहाहा! कहो, सेठ! इतने मात्र से? इतने मात्र से। आहाहा! इतना मात्र अर्थात्? अन्दर चैतन्यप्रभु, अनन्त गुण का धाम, अनन्त गुण का स्थान, उसका अनुभव हुआ, उसके सन्मुख होकर (तो) अनन्त भव का नाश हो गया। एक-दो भव है। अभी नरक में है, वहाँ से निकलकर आगामी चौबीसी तीर्थंकर होंगे। आगामी चौबीसी में इस भरतक्षेत्र में प्रथम तीर्थंकर होंगे और मोक्ष जाएँगे। आहाहा! यह क्रिया। अरे..! आहा..! सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? और सम्यग्ज्ञान क्या चीज़ है? सम्यग्ज्ञान।

शास्त्र की पढ़ाई वह कोई ज्ञान-सम्यग्ज्ञान नहीं है। आहा..! अन्तर ज्ञानमूर्ति आत्मा, ज्ञानस्वरूपी प्रभु, ज्ञान का ज्ञान और उस ज्ञान की अनुभव की प्रतीति, यह चीज़ हुई, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। उसके भव का छेद हो गया। आहाहा! यहाँ वह कहते हैं।

ज्ञानी को **भूमिकानुसार बाह्य वर्तन होता है परन्तु चाहे जिस संयोग में उसकी ज्ञान-वैराग्यशक्ति कोई और ही रहती है।** है? आहाहा! माता, जिसके पेट में सवा नव महीना रहा, उस जनेता को कहीं भी देखे, माता की दृष्टि से ही देखता है। आहा..! उसकी दृष्टि दूसरी होती नहीं। ऐसे आत्मा का, राग से भिन्न आत्मा का भान होने से चाहे किसी भी क्षेत्र में, काल, वर्तन में हो परन्तु अपने स्वरूप का भान भूलते नहीं। आहाहा! ऐसी बात मिली नहीं, करे कहाँ से? अरेरे..! जिन्दगी चली जाती है।

मैं तो ज्ञायक सो ज्ञायक ही हूँ,... है? धर्मीजीव को तो कोई भी प्रसंग में, स्त्री का प्रसंग भी न हो,... आहाहा! समकिती शादी भी करे। भरत चक्रवर्ती समकिती, ९६ हजार स्त्रियाँ। आहा..! अन्दर में तो उस ओर लक्ष्य जाता है, वह जहर है। आहाहा! अन्तर में तो ज्ञान और वैराग्य तो हमेशा-निरन्तर वर्तते हैं। अपना ज्ञान और पुण्य-पाप के भाव से विरक्त-वैराग्य, वह वैराग्य (है)। पुण्य-पाप भाव होता है, उससे विरक्त और अपना ज्ञान। ज्ञान और वैराग्य तो समकिती को हमेशा चाहे किसी भी क्षेत्र में भी वर्तता है। आहाहा! है? **मैं तो ज्ञायक सो ज्ञायक ही हूँ, निःशंक ज्ञायक हूँ;...** आहाहा! निःसन्देह जाननशरीर पिण्ड, वह मैं हूँ। दूसरी कोई चीज़ मैं नहीं हूँ। आहाहा! ऐसी अन्तर में प्रतीति होनी, वह अलौकिक चीज़ है। आहाहा! और करना हो तो प्रथम यह करना है। चारित्र और पच्चखाण की बात बाद में है। आहा..! यह बात नहीं है तो बाकी सब निरर्थक है। करोड़ शून्य, एक अंक के बिना सब शून्य है। एक अंक लगाये तो दस हो जाए। और एक के बिना करोड़ शून्य, शून्य है।

ऐसे अपना... आहाहा! अपनी चैतन्यशक्ति के भान बिना, उसके अनुभव और प्रतीति बिना सब शून्य है। बाह्य त्याग हो या नग्न मुनि हो गया, सब बिना एक के शून्य हैं। आहाहा! क्यों? मैं तो ज्ञायक ही हूँ। **निःशंक ज्ञायक हूँ; विभाव और मैं कभी एक नहीं हुए;...** आहाहा! विभाव का विकल्प राग, चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति का राग हो, वह राग विभाव है। आहाहा! विकार है। **विभाव और मैं कभी एक नहीं हुए;...** ऐसा

समकिती को-धर्मी को होता है। यह करना है। आहाहा! **ज्ञायक पृथक् ही है,...** जाननस्वरूप भगवान आत्मा पूरी चीज़ रागादि विकल्प से बिल्कुल भिन्न है। बाह्य चीज़ की तो बात ही क्या करना? बाह्य चीज़ शरीरादि तो बिल्कुल भिन्न है। परन्तु पुण्य और पाप का भाव भी मेरे में नहीं है, मेरे से भिन्न है। आहाहा! किसे ऐसी पड़ी है? देह छूटकर मैं कहाँ जाऊँगा? मेरी सत्ता तो अनादि-अनन्त है। इस देह का नाश होगा तो अपनी सत्ता का नाश नहीं होगा। वह सत्ता कहीं चली जाएगी। आहाहा!

सारा ब्रह्माण्ड पलट जाय, तथापि पृथक ही है। समकिती को, सारा ब्रह्माण्ड पलट जाए, (तथापि) ज्ञानस्वरूप मैं हूँ, वह तो पृथक् ही है। पृथक् के साथ कभी एकत्व होता नहीं। आहाहा! **ऐसा अचल निर्णय होता है।** ऐसा चलायमान न हो, ऐसा निर्णय होता है। आहाहा! मूल पहली चीज़ यह है। पहली का ठिकाना नहीं और ऊपर की बात। भक्ति, पूजा, दया और दान। आहा..! **स्वरूप-अनुभव में...** अपना स्वरूप जो ज्ञानानन्द चैतन्य स्वरूप, उसके अनुभव में **अत्यन्त निःशंकता वर्तती है।** अत्यन्त निःशंकता वर्तती है। आहाहा! **ज्ञायक ऊपर चढ़कर—ऊर्ध्वरूप से विराजता है,...** आहाहा! क्या कहते हैं? ज्ञायक। मैं तो एक जानन-देखनस्वरूप चैतन्यसूर्य, ज्ञायक ज्ञायकचन्द्र, शीतलस्वरूप ज्ञायकचनद्र पर दृष्टि रखकर, **ऊपर चढ़कर—ऊर्ध्वरूप से विराजता है,...** विकल्प से लेकर सब राग से भिन्न ऊर्ध्व अर्थात् ऊँचा रहता है। आहाहा!

दूसरा सब नीचे रह जाता है। आहाहा! ऐसी बात है, शान्तिभाई! दुनिया कुछ भी मानो। चीज़ तो भगवान अनन्त तीर्थंकरों... सीमन्धर भगवान तो विराजते हैं। वे वहाँ कहते हैं, वहाँ से आयी हुई बात है। बहिन वहाँ थे। समवसरण में जाते थे। आहाहा! अन्तिम में परिणाम में अन्तर पड़ गया तो यहाँ स्त्रीपने आ गये हैं। आहाहा! बाद में यह भान हुआ और यह बात लिखते हैं। आहाहा! **ऊर्ध्वरूप से विराजता है,...** मैं तो सबसे, अरे..! जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे उस भाव से मैं ऊँचा-ऊर्ध्व हूँ। वह चीज़ तो नीचे रह गयी। आहाहा! उसका आदर भी नहीं है। आहाहा! ऐसा उपदेश। बहिन रात को बोले होंगे, वह लिखा था। रात को। उन्हें पता नहीं था कि कौन लिख रहा है। ६४ बाल ब्रह्मचारी बहनें हैं न। ६४ लड़कियाँ बाल ब्रह्मचारी हैं। ग्रेज्युऐट है, कुछ तो लाखोंपति की लड़की है, बहिन के नीचे। उसमें नौ बहिनों ने लिख लिया, इसलिए बाहर आ गया, नहीं तो बाहर नहीं आता।

आहाहा! आज किसी का लिखा हुआ आया है कि यह (पुस्तक) पूरी पढ़नी। आहाहा! **दूसरा सब नीचे रह जाता है।** ३८९ पूरा हुआ। ३९० है न? ३९० है।

मुनिराज समाधिपरिणत हैं। वे ज्ञायक का अवलम्बन लेकर विशेष-विशेष समाधिसुख प्रगट करने को उत्सुक हैं। मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं कि मुनि 'सकल विमल केवलज्ञानदर्शन के लोलुप' हैं। 'स्वरूप में कब ऐसी स्थिरता होगी, जब श्रेणी लगकर वीतरागदशा प्रगट होगी? कब ऐसा अवसर आयेगा, जब स्वरूप में उग्र रमणता होगी और आत्मा का परिपूर्ण स्वभाव ज्ञान-केवलज्ञान प्रगट होगा? कब ऐसा परम ध्यान जमेगा कि आत्मा शाश्वतरूप से आत्मस्वभाव में ही रह जाएगा?' ऐसी भावना मुनिराज को वर्तती है। आत्मा के आश्रय से एकाग्रता करते-करते वे केवलज्ञान के समीप जा रहे हैं। प्रचुर शान्ति का वेदन होता है। कषाय बहुत मन्द हो गये हैं। कदाचित् कुछ ऋद्धियाँ—चमत्कार भी प्रगट होते जाते हैं; परन्तु उनका उनके प्रति दुर्लक्ष है। 'हमें ये चमत्कार नहीं चाहिए। हमें तो पूर्ण चैतन्यचमत्कार चाहिए। उसके साधनरूप, ऐसा ध्यान—ऐसी निर्विकल्पता—ऐसी समाधि चाहिए कि जिसके परिणाम से असंख्य प्रदेशों में प्रत्येक गुण उसकी परिपूर्ण पर्याय से प्रगट हो, चैतन्य का पूर्ण विलास प्रगट हो।' इस भावना को मुनिराज आत्मा में अत्यन्त लीनता द्वारा सफल करते हैं॥३९०॥

३९० है। **मुनिराज...** आहाहा! समकिती की तो बात क्या करना, परन्तु अब मुनिराज क्या है? जो अन्तर में **समाधिपरिणत हैं।** समाधि (अर्थात्) दूसरे साधु समाधि लगाये वह नहीं। समाधि का अर्थ—आधि, व्याधि, उपाधि तीन से रहित समाधि। अब तीन का अर्थ। आहाहा! आधि, व्याधि, उपाधि तीन से रहित समाधि। आधि का अर्थ संकल्प-विकल्प। आहाहा! अन्दर में पुण्य और पाप का विकल्प वह आधि। उससे रहित समाधि। व्याधि-शरीर में रोग। उपाधि - ये स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, व्यापार-धन्धा, वह उपाधि। उपाधि, व्याधि, आधि तीन से रहित। अरे..! भगवान! आहाहा!

लोगस्स में आता है। श्वेताम्बर में लोगस्स आता है। अपने दिगम्बर में लोगस्स

आता है, परन्तु वह बाह्य में प्रसिद्ध नहीं है। स्थानकवासी और श्वेताम्बर में बाहर प्रसिद्ध है। बाहर की मानी हुई सामायिक करे न ? अपने सामायिक में लोगस्स आता है। लोगस्स में ऐसा आता है। समाहिवर मुत्तम दिंतु। ऐसा अपने में श्लोक आता है। समाहिवर। हे नाथ! मुझे तो समाधि चाहिए। समाहिवर उत्तम। परन्तु वह समाधि कौन-सी ? यह। आधि-व्याधि-उपाधि रहित समाधि। आहाहा! आधि अर्थात् पुण्य-पाप का विकल्प जो उठता है, दया, दान, काम, क्रोध का, वह सब आधि है, विकार है। शरीर में व्याधि, वह रोग है और लक्ष्मी, मकान, स्त्री, कुटुम्ब, इज्जत, धूल, वह उपाधि है। आहाहा! भगवान को पैसा उपाधि है। आहाहा! भगवान आत्मा को स्त्री उपाधि है। क्यों माने ?

मुमुक्षु :- पुत्र उपाधि है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- पुत्र भी उपाधि है। उनका एक पुत्र है न। आठ हजार का एक महीने का वेतन है। अभी आया था न। इनके जन्मदिवस पर। भाद्र शुक्ल चतुर्थी। ९८ वर्ष हुए। ९८। सौ में दो कम। तो आया था। वहाँ मुम्बई में है। छह हजार का वेतन है और दो हजार रहने का मकान का, सब मिलाकर आठ हजार एक महीने का है। आया था। वह सब उपाधि है। आहाहा!

भगवान! तुझे कठिन पड़े, प्रभु! क्या करें ? सन्त कहते हैं कि क्या कहें ? हमें आश्चर्य और खेद होता है। हमें भी राग है, हम वीतराग नहीं हुए हैं, हमको भी आश्चर्य और खेद होता है, प्रभु! तू क्या करता है ? अरे..! अन्तर की चीज़ अन्दर भगवान आत्मा विराजता है। उसको छोड़कर परचीज़ जो तेरे में नहीं है, उसे अपना मानकर तेरी जिन्दगी वहाँ चली जाती है। प्रभु! अब वह मनुष्यपना कब मिलेगा ? तुझे अनन्त भव में कब मिलेगा ? आहाहा!

वह कहते हैं, **मुनिराज समाधिपरिणत हैं।** समाधि समझे ? शान्ति.. शान्ति.. शान्ति.. वीतरागता। अन्तर में वीतरागता परिणत। उसका नाम मुनिराज है। महाव्रत और पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, वह मुनिपना नहीं है। आहाहा! ये सेठ बाहर से देखे क्रियाकाण्ड, नग्नपना देखे, क्रिया निर्दोष... जय प्रभु! सेठ! यह तो दृष्टान्त है। सबका ऐसा है न। सबको लागू पड़ता है। बहुत अरबपति देखे। करोड़ोंपति तो बहुत, परन्तु

अरबोंपति धूल में... हमने कहा, भिखारी है। भिखारी-भिखारी है। लाओ, लाओ, लाओ, लाओ... यहाँ तो मुझे कुछ नहीं चाहिए, मेरा आत्मा चाहिए। आहाहा!

मुमुक्षु :- भक्ति करते-करते मिल जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री :- विकल्प करते-करते पुण्यबन्ध होगा, संसार बढ़ेगा। भक्ति के राग को नियमसार में पद्मप्रभमलाारिदेव ने शुभभाव को घोर संसार कहा है। अपने आ गया है। घोर संसार। राग चाहे तो भक्ति का राग हो, आता है। पूर्ण वीतराग न हो, तब राग होता है। मन्दिर की भक्ति परमात्मा की, परन्तु वह सब शुभभाव है। वह क्रिया तो स्वतन्त्र जड़ की है, परन्तु अन्दर में जो भक्ति आदि का भाव है, वह शुभभाव है। आहाहा! वह शुभभाव अनन्त बार किया है। परन्तु शुभ से रहित मेरी चीज़ (है)।

ज्ञायक का अवलम्बन लेकर... देखो! आहा..! दूसरी लाईन मुनि तो ऐसे हैं, **वे ज्ञायक का अवलम्बन लेकर विशेष-विशेष समाधिसुख प्रगट करने को उत्सुक हैं।** आहाहा! अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द विशेष प्रगट करने को उत्सुक है। आहाहा! फर्क है? गुजराती है, ठीक। यह हिन्दी है। **मुनिवर श्री पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं...** मुनि। **मुनि 'सकल विमल केवलज्ञानदर्शन के लोलुप' हैं।** प्रभु! मैं तो केवलज्ञान का लोलुपी हूँ। आहाहा! जगत पैसा, स्त्री और इज्जत का लालुपी है। आहाहा! तो मुनिराज कहते हैं, पद्मप्रभमलधारि मुनि, ये कुन्दकुन्दाचार्य (हैं), वह अमृतचन्द्राचार्य। नियमसार के टीका करनेवाले मुनि थे। और कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य दोनों आचार्य थे। ये मुनि थे। मुनि ऐसा कहते हैं... सच्चे मुनि थे, हों! सच्चे भावलिंगी। आहाहा! वे ऐसा कहते हैं कि **मुनि 'सकल विमल केवलज्ञानदर्शन के लोलुप' हैं।** पूर्ण केवलज्ञान प्रगट करने में तो लोलुपी हैं। उसमें वे लोलुप हैं। आहाहा! दूसरी कोई चीज़ में उनकी लोलुपता नहीं है। शास्त्र में तो.. एक षट्खण्डागम है, बड़ा पुस्तक है। चालीस पुस्तक है। एक-एक पुस्तक दस-बारह रुपये का, ऐसे चालीस पुस्तक हैं। षट्खण्डागम। वीतराग की पुरानी वाणी। उसमें तो ऐसा लिखा है कि सम्यग्दर्शन, मतिज्ञान जब होता है, आत्मा का ज्ञान होता है, आनन्द का भान और जब मतिज्ञान होता है, तो वह मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। आहाहा! यह बात... बुलाता है अर्थात्? पाठ ऐसा है। मतिज्ञान केवलज्ञान को बुलाता है। अर्थात् मतिज्ञान केवलज्ञन को (कहता है), जल्दी आओ, जल्दी आओ। आहाहा! कहीं

जाना हो तो बुलाते हैं न ? ऐ.. भैया ! सिद्धपुर जाने का रास्ता कौन-सा है ? यहाँ तो सिद्धपुर जाने का रास्ता (पूछते हैं) । वैसे यह केवलज्ञान को बुलाता है । सम्यग्ज्ञान हुआ, आत्मा राग से भिन्न ज्ञायक.. देखो ! आहाहा !

मुनि 'सकल विमल केवलज्ञानदर्शन के लोलुप' हैं । आहाहा ! पूर्ण ज्ञान और पूर्ण दर्शन । ऐसा केवलज्ञान और केवलदर्शन । उसका लोलुप हैं । आहाहा ! मुनि तो उसके लोलुपी हैं । एकदम सकल केवलज्ञान और केवलदर्शन हो जाओ । कोई दूसरी चीज़, महाव्रतादि के विकल्प में रुकने में उनकी रुचि नहीं है, दुःख लगता है । महाव्रत का परिणाम दुःख लगता है । अरेरे ! आहा.. ! क्योंकि राग है, आस्रव है, दुःख है । आहाहा ! दुःख से रहित आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु पूर्णानन्द की पर्याय मुझे कब होगी ? ऐसे लोलुपी, केवलज्ञान, केवलदर्शन के लोलुपी हैं । आहाहा !

'स्वरूप में कब ऐसी स्थिरता होगी, जब श्रेणी लगकर वीतरागदशा प्रगट होगी ? ऐसी भावना है । आहाहा ! दुनिया की इज्जत-कीर्ति का ख्याल नहीं है । **'स्वरूप में कब ऐसी स्थिरता होगी, जब श्रेणी लगकर वीतरागदशा प्रगट होगी ? कब ऐसा अवसर आयेगा, जब स्वरूप में उग्र रमणता होगी...** आहाहा ! अन्दर स्वरूप जो चैतन्य भगवान ज्ञान, उसमें पूर्ण रमणता कब होगी, ऐसी भावना है । धर्मी की मुनि की तो यह भावना होती है । आहाहा ! है ? **और आत्मा का परिपूर्ण स्वभाव ज्ञान-केवलज्ञान प्रगट होगा ?** आहाहा ! कब ऐसा अवसर आयेगा ? है न ? कब ऐसा अवसर आयेगा, जब स्वरूप में **स्वभाव ज्ञान-केवलज्ञान प्रगट होगा ?** आहाहा ! यह मुनि की भावना है । पंच महाव्रत का परिणाम होता है, परन्तु वह तो विकल्प है, राग है । आहाहा !

कब ऐसा परम ध्यान जमेगा... आहाहा ! मुनि तो यह भावना करते हैं, कहते हैं... **कब ऐसा परम ध्यान जमेगा कि आत्मा शाश्वतरूप से आत्मस्वभाव में ही रह जाएगा ?'** आहाहा ! ये मुनिदशा, बापू ! वह तो अलौकिक बातें हैं ! आहाहा ! कब **आत्मा शाश्वतरूप से आत्मस्वभाव में ही रह जाएगा ?' ऐसी भावना मुनिराज को वर्तती है ।** लो । ऐसी भावना मुनिराज को हमेशा वर्तती है । **आत्मा के आश्रय से एकाग्रता करते-करते...** क्या कहते हैं ? आत्मा के आश्रय से—भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप उसके आश्रय से; पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत का आश्रय नहीं,... आहाहा ! सूक्ष्म बात तो है, भाई !

यह तो बहिन अन्दर से बोले थे, बहनों ने लिख लिया था। आहा..! बाहर आया। अभी करीब अस्सी हजार पुस्तक प्रकाशित हो गये हैं। एक लाख प्रकाशित होंगे। आया था तभी रामजीभाई को कहा था, एक लाख (छपवाओ)। इतने छपे, उसमें कभी किसी को कुछ नहीं कहा। पैसा यहाँ रखो, दो, ऐसा कभी किसी को नहीं कहा है। करोड़ों रुपयों का खर्च हुआ है, कभी किसी को कहा नहीं कि ऐसा करो। परन्तु यह देखकर ऐसा हो गया कि ओहोहो! यह एक लाख पुस्तक छपवाओ। बहुत (छप) गये हैं।

एकाग्रता करते-करते वे केवलज्ञान के समीप जा रहे हैं। हैं? आहाहा! अपने ज्ञान में... ज्ञानस्वरूप ज्ञान, हों! शास्त्र का ज्ञान नहीं। ज्ञानस्वरूप जो भगवान आत्मा, उसमें **समीप जा रहे हैं।** आहाहा! **प्रचुर शान्ति का वेदन होता है।** आहा..! अन्दर विशेष जाते हैं (तो) प्रचुर शान्ति का वेदन होता है। **कषाय बहुत मन्द हो गये हैं। कदाचित् कुछ ऋद्धियाँ—चमत्कार भी प्रगट होते जाते हैं; परन्तु उनका उनके प्रति दुर्लक्ष है।** चमत्कार पर भी लक्ष्य नहीं है। **'हमें ये चमत्कार नहीं चाहिए। हमें तो पूर्ण चैतन्यचमत्कार चाहिए।** आहाहा! पूर्ण केवलज्ञान, केवलदर्शन चमत्कार। **उसके साधनरूप, ऐसा ध्यान—ऐसी निर्विकल्पता—ऐसी समाधि चाहिए कि जिसके परिणाम से असंख्य प्रदेशों में प्रत्येक गुण उसकी परिपूर्ण पर्याय से प्रगट हो, चैतन्य का पूर्ण विलास प्रगट हो।' इस भावना को मुनिराज आत्मा में अत्यन्त लीनता द्वारा सफल करते हैं।** सफल करते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)